

ज्ञानवैभवधारी
 सातिशय श्रुतज्ञानके
 धनी
 भावि तीर्थाधिनाथ की
 भेंट करानेवाले
 चैतन्यरत्न
 प्रशममूर्ति धन्यावतार
 पूज्य बहिनश्री
 चंपाबहिन को उनके
 १०७वें मंगलकारी
 जन्मजयंती प्रसंग पर
 शत शत वंदन !!



(पूज्य बहिनश्री) गणधरका जीव हैं, इसलिये भविष्यमें वे बारह अंगकी रचना करेंगे। बहिनश्रीकी नजर बहुत सूक्ष्म थी जैसे कि वर्तमान समाजको वास्तवमें क्या देना जरूरी है, यह उनके ज्ञानमें बहुत आया है। उनके वचनामृत प्रसिद्ध हुए तब गुरुदेव फिदा हो गये! आफरीन हो गये! एक-एक बोलमें अकेला अध्यात्मका अमृत भरा है ऐसा कहना होगा। ...भावनाका विषय प्रस्थापित करके तो उन्होंने जैसे फैंसला ही कर दिया है। मुमुक्षुओंको तो जैसे एक रत्न ही हाथमें आ गया ऐसा कहना होगा।

(पूज्य भाईश्री शशीभाई)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२७२, वर्ष-२४, अगस्त-२०२०

आषाढ़ कृष्ण ५, गुरुवार, दि. ७-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-७६ प्रवचन-२८

दो को छोड़कर दो गुण विचारे। लो,
ग्रहण-त्याग का विकल्प भेद, यह भी व्यवहार से
एक विकल्प है।

बे छंडिवि बे गुण सहिउ जो अप्पाणि
वसेइ।

जिणु सामिउ एमई भणइ लहु णिव्वाणु लहेइ।
७७।।

जिनवरस्वामी ऐसा कहते हैं। जिनेन्द्र भगवान
त्रिलोक के नाथ जिनेन्द्र प्रभु ऐसा कहते हैं कि
जो दो को अर्थात् राग-द्वेष को छोड़कर...
लो, ठीक! आत्मा वीतरागस्वरूप में से भेद पड़कर
राग-द्वेष को छोड़कर ज्ञान-दर्शन दो गुणधारी
आत्मा में तिष्ठता है... आत्मा में स्थित होना,
परन्तु ज्ञान और दर्शन का धारक - ऐसे आत्मा
में स्थिर होना। मूल तो आत्मा में स्थित होना
है। ज्ञान-दर्शन का धारक ऐसा कहा है। ज्ञान-दर्शन
का विचार करके, यहाँ प्रश्न नहीं है। यह तो ज्ञान-
दर्शन का धारक भगवान आत्मा एकरूप है, उसमें
'अप्पाणि वसेइ' उस आत्मा में बसे। भेद में बसना,
वह अभी आत्मा में बसना नहीं है। समझ में आया?
उसमें समुच्चय नाम लिये थे। 'जाहँ एयहँ लक्खण'
उसके लक्षण जानना। अब यह कहते हैं कि इन

सब विचारों को रोककर यह आत्मा-ज्ञान-दर्शनरूप
का धारक है, ऐसे आत्मा में बसना। कहो, समझ
में आया?

दो के लक्षणवाला, ऐसा नहीं। दो का रूप
वह एक आत्मा - ऐसे आत्मा में बसना। लो,
आत्मा में बसना। ओ...हो...! अपने शुद्धस्वरूप
भगवान में रुचि-ज्ञान और स्थिरता करने का नाम
बसना कहा जाता है - ऐसा करे तो 'जिणु सामिउ
एम भणई लहु णिव्वाणु लहेइ' तो वह शीघ्र
ही निर्वाण को पाता है... अल्प काल में उस
जीव की मुक्ति होगी - ऐसा जिनेन्द्रस्वामी (कहते
हैं)। जिणु सामिउ कहा है न? इसलिए जिनेन्द्र
लिया। स्वामी-जिनस्वामी ऐसा कहते हैं। जिनस्वामी
अर्थात् जिनेन्द्र। जिन के स्वामी अर्थात् जिनेन्द्र
आहा...हा...! 'जिणु सामिउ एमई भणइ' जिन
के इन्द्र ऐसे जिनेन्द्र प्रभु यह कहते हैं, जिनेन्द्र
प्रभु ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा में, वह जानने-
देखनेवाला दो धारक एक तत्त्व है, ऐसे आत्मा
में बसे तो अल्प काल में मुक्ति होती है - ऐसा
जिनेन्द्रदेव कहते हैं। यह क्रिया कैसी? समझ में
आया?

बन्ध का मूल कारण राग-द्वेष है, उनका

त्याग करना। राग-द्वेष का खण्ड। भगवान् वीतरागस्वरूप है, उसमें खण्ड होना, यह ठीक-अठीक, यह राग-द्वेष है। ठीक-अठीकपना उसके स्वभाव में नहीं है। कोई अनुकूल चीज ठीक और प्रतिकूल अठीक - यह वस्तु में ही नहीं है। इसमें, (आत्मा में) नहीं है और उसमें भी नहीं है (अर्थात्) ज्ञात होने योग्य चीज में भी कोई ठीक और अठीक (ऐसे) दो भाग ही नहीं हैं और आत्मा में ऐसा भंग नहीं है, वह तो वीतरागस्वरूप है। यह ठीक और अठीक - ऐसे विकल्प

उत्पन्न हों, वे वस्तु में नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! निरोग शरीर होवे तो धर्म होता है, लो! यह कहते हैं ऐसा स्वरूप में है ही नहीं। सुन न! अब वह तो परज्ञेय है, वह तो जानने योग्य ज्ञेय है। उसमें ऐसा होवे तो ऐसा हो, वहाँ हो तो यहाँ हो ऐसा यहाँ कहाँ था? आहा...हा...!

खाने-पीने के साधन हो, सुविधायें हों, स्त्री-पुत्र अच्छे हों, सेवा-वेबा करे, तो कुछ वैयावृत्य में सेवा टहल में अन्तर पड़े। पड़ता होगा या नहीं? स्त्री अच्छी हो, पुत्र हो, सब इसे चाहते हों, ठण्डे समय आना चाहिए गर्म समय आना चाहिए, सबेरे में आना चाहिए, शाम को (आना चाहिए)। यह सब घर के लोग जानें - ऐसी सब सुविधा, व्यवस्था समान हो तो इसे स्फूर्ति रहती है या नहीं?

मुमुक्षु : शरीर के साथ आत्मा का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर : यही कहते हैं कि बाहर में ठीक-अठीक ऐसा किसी चीज में नहीं है, इसलिए राग-

द्वेष छोड़ दे। तेरे स्वभाव में नहीं है। ठीक-अठीक मानना - ऐसा तेरा स्वरूप नहीं है। तू तो जानने-देखनेवाला (है और) यह एकरूप से ज्ञात होता है। समस्त वस्तुएँ ज्ञात होती है, वे एकरूप से (ज्ञात होती है)। यह ठीक-अठीक ऐसे दो भाग हैं ही नहीं। आहा...हा...! और तेरे में भी दो भाग नहीं हैं। तू एकरूप से ही सबको जान, बस! यह तेरा स्वरूप है। ऐसे जानने-देखने के भाव में राग-द्वेष को छोड़कर। समझ में आया? यह त्याग करने का क्रम है।



पहले मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय सम्बन्धी राग-द्वेष का त्याग करना। मिथ्यादृष्टि जीव पर पदार्थ को आत्मा मानने की भूल करता है। मिथ्यादृष्टि जीव अन्दर में पर-पदार्थ में आत्मा मानने की भूल करता है। आत्मा अर्थात् मुझे लाभ होगा,

उससे नुकसान होगा - ऐसा माननेवाला पर को अपना मानता है। आहा...हा...! आत्मा, भगवान् आत्मा के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ मुझे यह ठीक है, ऐसा वीर्य का उत्साह, उत्साहित वीर्य (होता है), वह अनन्तानुबन्धी का क्रोध, मान, माया, लोभ है। समझ में आया? माया और लोभ ये राग के घर के हैं और क्रोध और मान दो द्वेष के घर के हैं। कोई भी वीर्य उल्लसित (होवे कि) यह ठीक है, उसे अनन्तानुबन्धी माया, लोभ कहते हैं। यह ठीक नहीं है, उसे अनन्तानुबन्धी का क्रोध-मान (कहते हैं) उसमें पर की एकत्वबुद्धि होती है। समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि पर मैं अहंकार और ममकारभाव करता है। यह मैं और यह मेरे। इन्द्रियजनित पराधीन सुख को सच्चा सुख मानता है। अज्ञानी, इन्द्रियों में उत्पन्न हुआ सुख (उसे सच्चा मानता है)। मौसमी खाई-पिया, ऐसे गद्दे महंगे रेशम के, रस-पूरी खाये हों और फिर रेशम के गद्दे पर सोया हो, सिर पर पंखा चलता हो, तो ओढ़ने की जरूरत नहीं, मक्खी छूती नहीं, आहा...हा...! कितनी सुविधा! कहते हैं कि इसमें मिथ्यादृष्टि सुखबुद्धि मानता है। आहा...हा...! ऐसी व्यवस्था... केला और पूड़ी सीधे उतर जाते हों, चबाना भी नहीं पड़े और ऊँचे दर्इथरा (मीठी पूड़ी) हो खाये और फिर मलमल ओढ़ कर सो जाये, नागरवेल का पान चबाता हो, सेठ सुख से सोता हो, मूढ है - ऐसा कहते हैं। उसमें सुखबुद्धि माने

वह मिथ्यादृष्टि, परपदार्थ को अनुकूल माने बिना नहीं रहता। पराधीन सुख को सुख मानता है।

इस मिथ्यात्वभाव के कारण जिन विषयों के सेवन से इन्द्रियसुख की कल्पना करता है, उस पदार्थ में रागभाव करता है और जिससे विषयभोग में हानि होती है तथा जो विषय नहीं रुचते, उनके प्रति द्वेष करता है। यह लिया है, मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है न यह! जो इसे रुचता है, इसे मदद करनेवाला होता है, उसके प्रति राग करता है, नहीं रुचता इसे मदद करनेवाला नहीं होता, उसके प्रति द्वेष करता है। इस प्रकार राग-द्वेष के चार प्रकार हैं। फिर अनन्तानुबन्धी आदि के भेद किये हैं। पहले अनन्तानुबन्धी के तीव्र राग-द्वेष छोड़ना और स्वरूप की एकाग्रता करना।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव।)

आषाढ कृष्ण ६, शुक्रवार, दि. ८-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-७७ प्रवचन-२९

योगसार की ७७ गाथा! क्या कहते हैं? देखो!
बे छंडिवि बे गुण सहिउ जो अप्पाणि वसेइ।
जिणु सामिउ एमई भणइ लहु णिव्वाणु लहेइ।
७७।।

जो कोई आत्मा अपने में से राग-द्वेष (छोड़ता है)। पहले तो अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष छोड़कर अपने आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान, गुण ग्रहण करके अपने में एकाग्र होता है, 'अप्पाणि वसेइ' वह अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है।

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष के मिटाने के लिये सम्यग्दर्शन का लाभ

जरूरी है। दूसरा पैराग्राफ। कहो, समझ में आया? आचार्य महाराज, दिगम्बर आचार्य योगीन्दुदेव ऐसा कहते हैं, दो दोष को छोड़कर दो गुण ग्रहण करना। दो दोष - राग और द्वेष को छोड़कर, दो गुण-अपनी आत्मा के दर्शन और ज्ञान, उन्हें ग्रहण करना।

मुमुक्षु : राग-द्वेष तो दशवें (गुणस्थान में) छूटते हैं?

उत्तर : राग-द्वेष कहाँ दशवें में छूटते हैं। यहाँ तो चौथे गुणस्थान से राग-द्वेष को उपयोग की भूमिका में लाते ही नहीं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा के ज्ञान उपयोग में राग-द्वेष के परिणाम को एकत्वरूप से नहीं लाते, तब उसे सम्यग्दर्शन-

ज्ञान कहा जाता है। राग होता है, परन्तु राग और द्वेष को रोग जानते हैं। धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि, राग और द्वेष को रोग जानते हैं और अपना आत्मस्वभाव, शुद्धस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान करने को लाभदायक मानते हैं। कहो समझ में आया?

इस सम्यक्त्व के पाने का उपाय अपने आत्मा के यथार्थ स्वभाव का ज्ञान है... सम्यग्दर्शन पहली चीज है। अनन्त काल में अपना शुद्ध परमात्मा अकेला आनन्दकन्द अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप की अन्तरदृष्टि अनन्त काल में नहीं की है। अतः कहते हैं, पहले वह करना। अतीन्द्रिय आनन्द, सुख मुझमें है और मुझमें पुण्य-पाप के कषायभाव मेरी चीज में नहीं है - ऐसा सम्यक् प्राप्त करने का उपाय अपने आत्मा के यथार्थ स्वभाव का ज्ञान है।

यह आत्मा ज्ञानदर्शनस्वभाव का धारी है... भगवान आत्मा जानने-देखने अथवा श्रद्धास्वरूप त्रिकाल है। समझ में आया? जाननस्वभाव ज्ञान त्रिकाल है, श्रद्धास्वभाव ही त्रिकाल है - ऐसे आत्मा में दृष्टि लगाकर (सम्यक्त्व प्राप्त करना)। सूर्य के समान स्व-पर प्रकाशक है... ऐसा जानना। मैं अपने को जाननेवाला हूँ और राग शरीर को अपनी अस्ति में रहकर जाननेवाला हूँ, समझ में आया? ऐसा अन्तर निर्णय करे और अनुभव करे कि मैं आत्मा ज्ञान-दर्शन का धारक, ज्ञान-दर्शन का धारी हूँ। यहाँ दो की बात है, इसलिए दो लेते हैं।

ज्ञान-जानना और श्रद्धा अथवा दर्शन उपयोग, उसका धारक आत्मा अपने में रहकर दूसरे को और स्व को जाननेवाला है। समझ में आया? ऐसा सूर्य के समान भगवान आत्मा स्व-पर प्रकाशक सर्वज्ञ है सर्वदर्शी है... आत्मा सर्वज्ञ है, अभी; और सर्वदर्शी है। ज्ञान स्वभाव है तो ज्ञान सम्पूर्ण आत्मा

में है। दर्शन स्वभाव है, वह दर्शन सम्पूर्ण आत्मा में है और पूर्ण वीतराग है... आत्मा रागरहित है तो पूर्ण वीतराग है - ऐसे आत्मा की अन्तरदृष्टि और ज्ञान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। शुरुआत में, पहली भूमिका में यह प्रगट करना। पूर्ण आनन्दमय है... भगवान आत्मा का आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। सिद्ध में जैसा अतीन्द्रिय आनन्द है, वैसा मेरा स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द है। मैं उस अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन लेनेवाला हूँ। कहो, समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु : खावे और फिर दान दे?

उत्तर : कौन करे? धूल करे सब। खाये किसे? करे किसे? आहाहा...! अपनी भूमिका में - अपनी सत्ता में राग-द्वेष करे या हर्ष शोक भोगे। अपनी स्वाभाविक दृष्टि करने से अतीन्द्रिय आनन्द भोगे। दूसरा क्या करे? अपना आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय है। उसे करनेवाला और भोगनेवाला होता है आत्मा। ओ...हो...! अरे...! सोनी दागीना (गहने) बनाये? दागीने को क्या कहते हैं? जेवर। जेवर बनाये? सोनी को कुछ दे तो वह भोगे। क्या भोगे? पैसे को - धूल को भोगे? धूल को भी नहीं भोगता। मूढ मानता है। अपनी मौजूदगी में, अपनी सत्ता की भूमिका में करना और भोगना है। पर की सत्ता की भूमिका में करना-भोगना आत्मा को नहीं है।

मुमुक्षु : 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहते हैं, भोगता है और तन्मय नहीं होता?

उत्तर : इसका अर्थ क्या हुआ? भोगता है और तन्मय नहीं होता - इसका अर्थ यह हुआ कि पर में एकमेक नहीं होता और पर को भोगता है - ऐसा ज्ञान कराने के लिये निमित्त कहा जाता है। ओ...हो...! अद्भुत परन्तु पण्डितों ने भी पढ-

पढकर भारी उल्टी बात निकाली; कल ऐसा आया है। सोनी होता है न? सोनी - स्वर्णकार, वह जेवर बनाता है परन्तु एकमेक नहीं होता, जेवररूप नहीं होता परन्तु किसी पररूप से किस प्रकार होगा? और पररूप हुए बिना पर का कर्ता किस प्रकार होगा? और पररूप हुए बिना पर का भोगता भी किस प्रकार होगा? और पररूप तो कभी होता नहीं। आहा...हा...! लिखा है परन्तु उसका अर्थ समझना चाहिए न! लिखा क्या है? घी की शीशी लिखा हो, घी की वरण्डी नहीं कहते? घी की वरण्डी। घी की वरण्डी है? घी का बर्तन होता है? बर्तन तो पीतल, मिट्टी का होता है; घी तो उसमें रहता है। वह रहता है - ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। घी, घी में रहता है, बर्तन, बर्तन में रहता है। घी का बर्तन होता है? बोलने में आता है। बोलने में आया तो क्या हुआ? 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं, कुम्हार घड़ा बनाता है - ऐसा हम तो नहीं देखते। हम तो देखते हैं कि मिट्टी घट को बनाती है - ऐसा 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं।

मुमुक्षु : वे तो उपादान से कहते हैं?

उत्तर : परन्तु उपादान का अर्थ क्या? पदार्थ अपने से अपने परिणाम करता है; पर का परिणाम कभी नहीं करता। आहा... हा....!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दमय है... सम्यग्दर्शन, ज्ञान में अपने आनन्द को भोगनेवाला आत्मा है। अज्ञानमय राग-द्वेष को भोगनेवाला है; पर को तो भोगनेवाला है नहीं। यह शरीर मिट्टी-जड़ है। यह रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, मिट्टी-धूल है। दाल-भात, सब्जी, नमकीन, मिर्ची, मरी, आत्मा भोग सकता है? आत्मा चरपरा हो जाता है?

मुमुक्षु : बाजार में से लाकर टुकड़ा करके

खाता है?

उत्तर : कौन टुकड़ा करे? आहा...हा...! भाई! वे तो जगत् के पदार्थ अपनी वर्तमान अवस्था से परिणामित हो रहे हैं, पूर्व की अवस्था से बदल रहे हैं। उसमें तेरे करने भोगने का क्या आया?

स्वयं परमात्मस्वरूप... भगवान आत्मा (है)। स्वयं निजस्वरूप से तो परम स्वरूप ही, परमात्मा ही है। आठ कर्म, रागादिभाव कर्म, शरीर आदि (नोकर्म) से भिन्न है, अतीन्द्रिय सुख ही सच्चा सुख है - ऐसी प्रतीति लाकर बार-बार अपने ज्ञान-दर्शन स्वभावधारी आत्मा की भावना करते रहने से मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कषाय का उपशम-क्षयोपशम या क्षय हो जायेगा। ऐसा कहते हैं। समझे? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द सम्पन्न स्वरूप परिपूर्ण है- ऐसी बारम्बार एकाग्रता करने से दर्शनमोह आदि का क्षयोपशम, क्षय हो जाता है।

तब यह जीव सम्यग्दर्शन-गुण का प्रकाश कर सकेगा। मूढता चली जायेगी, सम्यक्ज्ञान हो जायेगा, बस! दर्शन और ज्ञान दो ले लिये। तब इसे निर्वाण पद पर पहुँचने की योग्यता हो जायेगी। वे दो लिये हैं। सही न? दर्शन और ज्ञान। चारित्र बाकी रहा। समझ में आया? इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है? ठीक किया है। निर्वाण, सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान - अपने शुद्धस्वरूप परमानन्द का ज्ञान और परमानन्द की दृष्टि हुई तो सम्यग्दर्शन, ज्ञानी हुआ तो मोक्ष प्राप्त करने के योग्य हो गया। अल्प काल में उसका मोक्ष होगा। वह सम्यग्दर्शन ज्ञान के बिना लाख-करोड़ क्रियाकाण्ड करे - दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम (करे परन्तु) उनसे कभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान अथवा मोक्ष का अधिकारी नहीं होगा। कहो समझ

में आया? तब बारह कषाय बाकी रहेंगी, चार अनन्तानुबन्धी गये; सोलह में से बारह बाकी रहे, नोकषाय भी है। चारित्र की कमी है। चौथे गुणस्थान में इक्कीस प्रकार के चारित्र-मोहनीय के उदय से राग-द्वेष हो जाता है। उसको वह रोग जानता है। कहो समझ में आया?

मन-वचन-काय की क्रिया को अपना कर्तव्य नहीं जानता है... आहा...हा...! जड़ की क्रिया, शरीर, वाणी, मिट्टी की जो पर्याय / क्रिया होती है, उसे धर्मी अपना कर्तव्य नहीं जानते, नहीं मानते, वह तो उसका जाननेवाले रहते हैं, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। कुछ समझ में आया? इस प्रकार राग-द्वेष का त्याग करके ज्ञान-दर्शन-गुणवाले आत्मा को प्राप्त करो। अन्तिम सारांश (क्रिया)। अन्तिम लाईन है। इस प्रकार राग-द्वेष का त्याग करके, ज्ञान-दर्शन

गुणवाले आत्मा को प्राप्त कर। पाठ में ऐसा है न कि दो दोष को छोड़े और दो (गुण को) ग्रहण करे।

‘समयसार’ का दृष्टान्त दिया है। महान ज्ञान के लक्षण धारी शुद्ध निश्चयनय के द्वारा... निश्चय अर्थात् सत्य दृष्टि द्वारा जो सदा ही अपने आत्मा के एक स्वभाव का अनुभव करते हैं... धर्मी जीव को राग हो, विकल्प हो, उससे रहित मेरी चीज एक स्वभावी, एक स्वभावी पूर्ण आनन्द, एक स्वभावी है - ऐसी दृष्टि करके आत्मा का अनुभव करते हैं। वे रागादिभावों से छूटकर बन्धरहित शुद्ध आत्मा को देख लेते हैं। रागभावों से छूटकर... विधुरं... विधुरं है न? विधुरं, बन्धविधुरं वह बन्ध से विधुर हो जाता है। यह ७७ (गाथा पूरी) हुई।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अगस्त-२०२०) का शुल्क श्री पीयूषभाई नगीनदास भायाणी, कोलकाटा के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके वचनामृत-१५१ पर भाववाही
प्रवचन, दि. ४-२-१९८३, प्रवचन
क्रमांक-६५७ (विषय : मार्गदर्शन)

आनंदकंद प्रभुके आस्वादन बिना अशुद्धभाव
नहीं छूटते और अशुद्ध संस्कार छूटे बिना
स्वरूप का अनुभव नहीं होता। रागसे
एकताके संस्कार छूटे बिना शुद्ध स्वरूपका
अनुभव नहीं होता और शुद्धस्वरूप का
अनुभव हुए बिना रागसे एकताके संस्कार
नहीं छूटते। महिमावन्त प्रभुकी ऐसी महिमा
भासित हुए बिना तुच्छता और पामरता
के संस्कार नहीं छूटते और तुच्छता तथा
पामरता के संस्कार छूटे बिना महिमावन्त
प्रभुकी महिमा नहीं होती। अतः अशुद्धताका
व्यय एवम् शुद्धताकी उत्पत्तिका एक ही
काल है। १६७.

क्योंकि कोई भी परिणाम उत्पन्न होते हैं तब
उसके पहले उसका कोई मेसेज नहीं आता है कि
अब यह परिणाम आयेगा... अब यह परिणाम
आयेगा... अब ऐसा परिणाम आयेगा। वह तो होते
ही रहते हैं। और वह हो जाने के बाद असंख्य
समय के बाद मतिज्ञानके उपयोग में आता है।
श्रुतज्ञान तो बाद में होता है। पहले मतिज्ञान होता
है, वह असंख्य समय के बाद होता है, जो उसकी
बुद्धि में पकड़ में आये ऐसा। ज्ञान भले ही तुरन्त
उस समय हाजिर हो। परन्तु उस ज्ञान में अवग्रह,
इहा और अवाय का स्टेज आता है तब उसे मालूम
पड़ता है। अवाय यानि निश्चय। ऐसा राग हुआ।
तब तक तो असंख्य समय व्यतीत हो गया होता
है। उसके पहले ज्ञान हुआ होता है, परन्तु ज्ञान
होना और पकड़ में आना दोनों में समयांतर है।
ज्ञान हो और ज्ञान की समझ में आये कि ऐसा
ज्ञान हुआ, उसमें असंख्य समय जाता है। यह
प्रकार है। अतः जो परिणाम हो गये उसको मिटाने
का तो सवाल ही नहीं है। जो नहीं हुए हैं, वह
नहीं हो उसके लिये वह क्या विचार करेगा? इसके

अलावा कि वह मूलमें-से नष्ट हो जाये और उत्पन्न
न हो। बाकी तो योग्यता रह गई हो तो परिणाम
हुए बिना नहीं रहेगा। यह, मूलमें-से वह परिणाम
होने की स्थितिरूप योग्यता, उसको टालने की बात
है। यदि एकता टूटे, एकत्व टूटे तो अनंतानुबंधी
न हो। राग भले ही हो लेकिन अनंतानुबंधी का
राग नहीं होगा। चारित्रमोह का है, ऊपर-ऊपर का
है, रस रहित है, उसे भिन्नपने जानते हुए हुआ
है। अतः उस राग का मूल तनिक भी गहरा नहीं है।

मुमुक्षु :— मिथ्यादृष्टि चाहे जितना मंद कषाय
करे परन्तु कषाय...

पूज्य भाईश्री :— हाँ, उसका कारण यह है कि उसे अन्दर में एकत्व पड़ा है कि इससे लाभ है, इस राग से लाभ है। किसी भी प्रकार के राग से लाभ, उस पर से लाभ... जिसने कतलखाना चलाया, उसको क्या है? यह कार्य करने-से मुझे जो कुछ मिलेगा उससे मुझे सुख होगा। बस! जिसने पैसे में सुख माना है, वह पैसा प्राप्त करने को क्या-क्या नहीं करेगा? उसका तो कोई हिसाब-किताब नहीं है कि वह क्या कुछ नहीं करेगा।

तो कहते हैं कि लेकिन जिसने व्यापार-धंधा छोड़ दिया उसने तो कहाँ पैसा में सुख माना है? वह तो त्याग हो गया है। वह त्यागी हुआ है लेकिन वह वैसे परिणाम नहीं करेगा उसका नियम क्या है? उसका नियम यह है कि राग की एकता तोड़ेगा तो वैसे परिणाम नहीं करेगा। अन्यथा उसे कोई न कोई वर्तमान वर्तते राग में एकता होती है तो वह राग कब कैसे पलटकर कितने हद तक जायेगा उसका कोई नियम नहीं है। इसलिये मिथ्यात्व को नशा कहने में आता है। मिथ्यात्व परिणाम को एक नशा—भ्रांति का नशा कहने में आता है। तो जब तक जीव को कोई नशा है तब, वह कौन-सी अनुचित चेष्टा नहीं करेगा, जैसे दारू पिया हो और नशे में चकचूर हो और शांत दिखता हो लेकिन उसका भरोसा क्या कि कब वह क्या कर बैठेगा? उसका भरोसा नहीं किया जाता। क्योंकि वह मनुष्य नशे में है। वैसे भले ही शांत दिखाई दे लेकिन मिथ्यात्व का नशा नहीं उतरता तब तक उस जीव के परिणाम का कोई भरोसा नहीं हो सकता। ऐसा है। चाहे जैसे परिणाम हो जायेंगे।

इसलिये कहते हैं कि प्रथम में प्रथम मोक्षमार्ग जहाँ-से शुरू होता है ऐसा जो सम्यग्दर्शन, चतुर्थ गुणस्थान कि जिसमें स्वरूपानुभव होता है, प्रथम

ही शुद्धोपयोग होता है, आत्मा के आनंदअमृत का अनुभव होता है तब उसे राग की एकता टूटती है और तब उसका वह नशा उतर गया है, महाविवेक प्रगट हुआ है। पूरे जगत का, समस्त जगत को 'जगत इष्ट नहीं आत्मसे'। समस्त जगत को उसने एक ओर रख दिया है और अनुभव में आया है। उसे जिन हुआ ऐसा कहा। धवल में उसे जिन हुआ ऐसा कहा है। उसकी वाणी को जिनवाणी कहा है। फिर सम्यग्दृष्टि है उसकी वाणी को जिनवाणी कहा है। फिर इस सम्यग्दृष्टि की वाणी जिनवाणी और इसकी वाणी जिनवाणी नहीं, ऐसा कोई विभाग नहीं है। सब की वाणी जिनवाणी है। ऐसा है।

गुरुदेव ने तो सम्यग्दृष्टि की बहुत महिमा दर्शायी है। बहुभाग उनके प्रवचन में यह विषय मुख्यरूप से आया है। क्योंकि जीवों को मिथ्यादर्शन छूटे और सम्यग्दर्शन हो। फिर तो उसका विवेक इतना जागृत होता है कि आगे का मार्ग उसके लिये स्पष्ट है। इसलिये उस विषय पर सम्यग्दर्शन की स्थिति की महत्ता इतनी की है कि सम्यग्दृष्टि बैल की खरी चलते-चलते विष्टा को स्पर्श कर ले तो उस विष्टा को धन्य है! इसमें भाव कहाँ आया? यह तो द्रव्य-स्पर्शना है। सम्यग्दृष्टि बैल है उसका शरीर है वह तो पुद्गलद्रव्य है। विष्टा के परमाणु भी पुद्गलद्रव्य है। कोई पुद्गलद्रव्य कोई पुद्गलद्रव्य के संयोग में आये उसमें आत्मा को क्या? फिर भी सम्यग्दर्शन की महिमा करने के लिये ऐसी बातें कर गये हैं। भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज है। पूरे संसार का नाश करनेवाले एक क्षण के परिणाम की शक्ति क्या, उसकी पवित्रता क्या, उसका अनुभव क्या? जिसके कब्जे में निज सर्वज्ञस्वभाव की, निज आत्मवैभव की, निज दिव्यशक्ति की समस्त शक्ति की पूरी दौलत का कब्जा आ गया वह सम्यग्दृष्टि

है। उसको अब दौलत का खर्च करना वह आगे का मार्ग है। परन्तु क़ब्जा तो पहले हो गया है। जो क़ब्जे में आया है उसका उपयोग करेगा। जिसके पास क़ब्जा नहीं है, उसे उपयोग करने का सवाल नहीं है।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— हाँ, वह बात मुख्य की है। चारित्र के अधिकार में मुनिदशा की बात, सर्वज्ञदशा की बात, गुणस्थान अनुसार शुक्लध्यान की श्रेणि की चर्चा, प्रश्न बहुत बातें आयी है। परन्तु मुख्य बात इसलिये ली है कि वर्तमान में जीवों को उसका अभाव है। अब मोक्षमार्ग की शुरूआत है यह भी समझ में न आये उसे आगे की बात क्या समझानी? दूसरा वर्णन तो बहुत आता हो, परन्तु मुख्य बात यही है कि यदि यहाँ रास्ता हो तो दूसरी बातें समझनी आसान है। नीचे की बात समझे नहीं, जो आसान दाखिला नहीं गिन सकता, उसे कठिन दाखिला गिनवाने की मेहनत क्यों करनी चाहिये? इसलिये दूसरी बात कहने का कोई खास प्रयोजन नहीं था।

मुमुक्षु :— ... अनेक पहलू से बात आती है, वह समझे ही नहीं।

पूज्य भाईश्री :— ऐसा है कि एक बात जो सम्यग्दर्शन की है उसमें अनंत गुण का परिणमन है। एक क्षण में अनंत गुण का शुद्ध परिणमन, आंशिक शुद्ध परिणमन है, भले ही पूर्ण शुद्ध परिणमन नहीं है परन्तु आंशिक शुद्ध परिणमन है लेकिन अनंत गुण का परिणमन है उसकी बात करे तो उसमें अनंत गुण की बात करनी है। एक गुण की, दो गुण की, एक हजार गुण की, लाख गुण की नहीं परन्तु अनंत गुण की बात करनी है। तो भले ही उसका विषय एक हो परन्तु अनंत पहलू से

उसकी बात हो सकती है। तो अनंत पहलू से कहने जाये तो अनंत काल लगे। उतना काल तो यहाँ है नहीं, मर्यादित काल है। इसलिये ऐसा कहते थे कि यह जो कहने में आता है वह मर्यादित कहने में आता है। पूरा कहने का समय नहीं है और पूरा कहने की पुद्गल की वाणी में सामर्थ्य भी नहीं है। वह भी अधूरा कह सकती है। वाणी भी 'जे पद श्री सर्वज्ञे दीतुं ज्ञानमां, कही शक्या नहीं ते पण श्री भगवान'। दिव्यध्वनि कह नहीं सकी, उस स्वरूप को अन्य छद्मस्थ की वाणी क्या कहेगी? 'अनुभवगोचर मात्र रहुं ते ज्ञान जो'। श्रीमद्जीने गाया है।

स्वयं सम्यग्दृष्टि है। उस पद की भावना भाते हैं। पूर्ण पद की भावना भाते हैं। कहते हैं, ज्ञान में अभी पूर्ण पद आता है। अनुभव में तो पूर्ण पद का—स्वरूप जो परिपूर्ण है अंतरंग में उसका, अनुभव है इसलिये उसका ज्ञान वर्तता है। और सर्वज्ञ भगवान को भी उसका ज्ञान वर्तता है। अब जिसे दिव्यध्वनि का योग हो, वे भी इस पद को कह नहीं सकते, तो नीचे, जिसने देखा है उसको तो उतना वाणी का योग नहीं है। उतना पुण्य नहीं है कि उतनी वाणी का योग हो, दिव्यध्वनि का। वह क्या कहेगी? इसलिये जितना विस्तार आता है वह मर्यादित आता है। पूरा विस्तार करने का तो वाणी में ही सामर्थ्य नहीं है।

कहते हैं कि 'महिमावन्त प्रभुकी ऐसी महिमा भासित हुए बिना...' अब यह दूसरे पहलू लिये। 'तुच्छता और पामरता के संस्कार नहीं छूटते और तुच्छता तथा पामरता के संस्कार छूटे बिना महिमावन्त प्रभुकी महिमा नहीं होती।' यह भाव भी साथ-साथ है। क्या कहते हैं? एक पहलू लिया—शुद्धता, अशुद्धता का

कि अशुद्धता के संस्कार मूलमें-से कब जाते हैं? कि शुद्ध स्वरूप का अनुभव में आनंद-अमृत का अनुभव में आस्वाद आये। दूसरा पहलू लिया, एकत्वपना का। कि रागादि की एकता टूटे तब उसे शुद्ध स्वरूप का अनुभव हो, शुद्ध स्वरूप का अनुभव हो तो ही रागादि की एकता टूटे। दूसरा पहलू। अब, यह तीसरा पहलू लिया। यह सब परिणाम एकसाथ होते हैं। कहने में क्रम पड़ता है और यह सब परिणाम हैं उसका उसे मेल बिठाना चाहिये। नहीं तो कहीं भूल होगी तो उसे...

भूल क्या होती है? बहुत जीव ऐसे भी होते हैं कि अत्यंत कषाय की मंदता में आते हैं, ध्यानादि का प्रयोग करते हैं और मानसिक शांति उत्पन्न होती है तब भी उसे ऐसा लगता है कि यह अनुभूति हो गई, अन्दर में जो परमात्मपद है उसकी अनुभूति हुई। वह अनुभूति सम्बन्धित भ्रम है। भ्रम की स्थिति अथवा पराकाष्ठा कहाँ तक की? कि अनुभूति सम्बन्धित भी जीवों को भ्रम होता है। तो वह भ्रम है कि सत्य है, यह कैसे नक्की करना? कि जिसे अनुभूति होती है उसे उसके परिणाम कैसे-कैसे होते हैं, उसके अन्य गुणों के जो परिणाम है उसका वर्णन भी अनुभवी पुरुषोंने शास्त्रों में किया है, कह गये हैं, उसके साथ उसे मिलान करना चाहिये। अपने परिणाम का और उन कथनों का उसे मिलान करना चाहिये कि जैसा कहते हैं ऐसा परिणाम होता है? या कुछ फेरफार है? यदि फेरफार है तो (जो माना है) वह अनुभव नहीं है बल्कि भ्रम है। इस प्रकार उसे मेल बिठाना चाहिये। इसलिये वह सब बातें करने में आती है कि जीव कहीं भूल न कर बैठे। उसके पीछे यह हेतु है।

एक ही बात भिन्न-भिन्न गुणों-से क्यों करनी चाहिये? कि भाई! उसके पीछे हेतु है कि भिन्न-

भिन्न योग्यतावाले को भिन्न-भिन्न प्रकार से उसमें भूल रहने की संभावना है। उस भूल की संभावना जानकर ऐसा कहने में आता है कि यह भूल इस प्रकार नहीं होनी चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये। ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये। इस प्रकार अस्ति-नास्ति दोनों प्रकार से विषय को स्पष्ट करने में आता है।

वह तीसरा पहलू महिमा का लिया है कि जिस जीव को अपने महिमावंत ऐसे प्रभु की महिमा न आये, परमात्मपद की महिमा आये बिना बाहर के तुच्छ विषयों के और पामरता के संस्कार छूटेंगे नहीं। तुच्छता और पामरता क्या चीज है? कि इच्छा हो, इच्छा के अनुकूल पदार्थ मिले तब उसे सुख का एवं शांति का, अथवा आनंद या हर्ष का अनुभव हो। कहते हैं कि, भाई! वह तो तुच्छ पदार्थ है, वह तो तुच्छ पदार्थ है। उस पदार्थ की कीमत कितनी? जो कोई पदार्थ के संयोग में तुझे सुख का अनुभव होता है उसकी कीमत कितनी?

हमने एक दृष्टांत लिया था। जस मनुष्य को बाह्य पदार्थ की महिमा है, वह कैसे महिमा करते हैं कि हम फलाने भाई के वहाँ भोजन के लिये गये थे। हमें हाथ पोंछने के लिये जो नेपकिन दिया था वह १८ रूपये का था। क्या कहता है? १८ रूपये का तो नेपकिन था। ऐसा कहता है।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा मंगल वाणी-सी.डी.६-C

मुमुक्षु :- रागादिसे भिन्न चिदानंद स्वभाव का भान और अनुभव हुआ, वहाँ धर्मी को मालूम पड़ता है कि नहीं मुझे अंतर का वेदन हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ?

समाधान :- अंतर में जीवन का परिवर्तन हो वह क्या मालूम नहीं पड़ता? लेकिन वह कैसे हो? वह तो गुरु के उपदेशसे होता है। अनन्त कालसे जो मार्ग अनजाना है वह गुरु के उपदेशसे होता है। अनन्त कालसे समझा नहीं है। गुरुदेवने परम उपकार किया है। उनके प्रतापसे सब समझे हैं। उनके प्रतापसे ही सब हुआ है। गुरुदेव के उपकार का तो क्या वर्णन करें? जितना करें उतना कम ही है। उनके उपकार बोलने की वाणी भी नहीं है। गुरुदेव का उपकार है। उन्होंने, स्वानुभूति किसे कहते हैं, मार्ग किसे कहते हैं, सब उन्होंने ही बताया है। उनका उपदेश तो कोई अनुपम था! गुरु के उपदेश के बिना स्वानुभूति प्रगट नहीं होती। ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। अनादिकालसे अनजाना मार्ग, भगवान की वाणी साक्षात् मिले अथवा गुरु की वाणी मिले तो ही वह प्राप्त होता है। और अंतर में जो प्रगट हो वह मालूम नहीं पड़े ऐसा थोड़ी ना हैं? पूरे जीवन का परिवर्तन होता है। अंधकार और प्रकाश दोनों जैसे प्रतिपक्ष है, वैसे जो भिन्न हैं वह मालूम नहीं पड़े ऐसा है क्या? विष और चीनी का स्वाद अलग-अलग मालूम नहीं पड़े ऐसा है क्या? उसे मालूम तो पड़ता ही है, पूरे जीवन का परिवर्तन हो जाता है।

कुन्दकुन्दाचार्य लिखते हैं, मेरे गुरुसे प्राप्त उपदेश, अनुग्रहपूर्वक दिया गया जो शुद्धात्मा का उपदेश, उससे



जो प्रगट हुआ है। निरंतर झरता हुआ, आस्वाद में आता हुआ सुंदर जो आनन्द उसकी छापवाला प्रचुर स्वसंवेदन, स्वस्वरूप जो स्वसंवेदन वह प्रचुर स्वसंवेदन है। वह कैसे प्रगट हुआ? मेरे गुरु के उपदेशसे। ऐसा कहते हैं। शुद्धात्म तत्त्व का अनुग्रहपूर्वक मेरे गुरुने उपदेश दिया कि शुद्धात्मा कैसा है। कृपा करके उसका उपदेश दिया उससे प्रगट हुआ है। गुरुदेवने तो यहाँ बरसों तक वाणी बरसाई है, उपदेश के धोध बहाये हैं। उसके आगे तो सब (तुच्छ है)।

गुरुने तो शुद्धात्म तत्त्व का उपदेश दिया। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरे गुरुने जो कृपा करके उपदेश दिया उससे वह प्रगट हुआ है। गुरुदेवने तो बरसों तक वाणी बरसाई। स्वानुभूति किसे कहते हैं, वह कोई अपूर्व उपदेश दिया है। उस उपदेशसे कितने ही जीवों का परिवर्तन हुआ है। अंतर रुचि का परिवर्तन सबका हो गया है। गुरु के उपदेशसे सब मिलता है। आचार्यदेव कहते हैं, निरंतर झरता हुआ, आस्वाद में आता हुआ सुंदर आनन्द की छापवाला। उसकी छाप क्या है? कि सुंदर आनन्द जिसमें रहा है। उसकी छापवाला जो प्रचुर स्वसंवेदन। वे तो मुनिराज हैं। कुन्दकुन्दाचार्य की क्या बात करें? वे तो मुनिराज हैं। उनका स्वसंवेदन, उससे जो प्रगट हुआ है, ऐसा स्वसंवेदन है। कहते हैं, हमारे गुरुसे जिसका जन्म हुआ है। ऐसा जो मेरा ज्ञान का वैभव है उससे मैं आपको कहता हूँ। उनके प्रसादसे-जो गुरु द्वारा दिया गया, जो ज्ञान का वैभव प्रगट हुआ है वह उनसे हुआ है। जो प्रगट

होता है वह गुप्त नहीं रहता। पूरे जीवन का परिवर्तन हो, अंतरमेंसे आत्मा प्रगट हो वह गुप्त थोड़े ही ना रहता है? अन्दर स्वयं अनन्त गुणसे भरपूर आत्मा स्वयं विभिन्न स्वभावों में झुलता हुआ, उसमें रमणता करता हुआ प्रगट होता है वह गुप्त नहीं रहता। भेदज्ञान हुआ वह गुप्त नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। वह तो कोई अपूर्व है, अनुपम है। उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। वह तो कोई अपूर्व है। ध्यान करे, आत्मा के आश्रय बिना ध्यान करे, यथार्थ ज्ञान के बिना ध्यान करे, ऐसे प्रगट नहीं होता। यथार्थ ज्ञानपूर्वक का ध्यान हो तो उसमें भेदज्ञान होता है। द्रव्य पर दृष्टि, दृष्टि के ज़ोर में ज्ञाता की उग्रता में जो प्रगट होता है, और आत्मा शांत होकर स्थिर हो जाय। वह कोई (गुप्त नहीं है), वह तो उसे प्रगट ही है। वह गुप्त नहीं रहता।

मुमुक्षु :- माताजी! आपने दृष्टांत दिया वह तो छट्टे-सातवें गुणस्थान में झुलते हुए भावमुनि का दिया। तो चतुर्थ गुणस्थान में ऐसा आस्वाद आये तो ख्याल आता है? वह तो बहुत ही अल्प काल होता है।

समाधान :- चतुर्थ गुणस्थान में भले अल्प हो लेकिन ज्ञान उसे ग्रहण किये बिना नहीं रहता। ज्ञान तो सबको ग्रहण कर लेता है। ज्ञान तो सब वेदन को ग्रहण (कर लेता है)। अल्पकाल यानि ऐसा काल नहीं है कि जो वेदन में नहीं आये और अप्रगट हो। उन्हें वेदन में आता है। मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है। तो भी सम्यग्दृष्टि को भी वह वेदन में आता है, ज्ञान में ग्रहण होता है। अल्पकाल हो तो भी उसे ग्रहण हुए बिना रहता नहीं। अंतर आत्मा में गया और पलटकर आत्मा अन्दरसे प्रगट होता है, वह उसे वेदन में आता है। उसे स्पष्टरूपसे साक्षात् प्रत्यक्ष निःशंकरूपसे उसके वेदन में आता है और वह ज्ञान में जान सकता है। सम्यग्दृष्टि भी।

यह तो शास्त्र में भी आता है। सम्यग्दृष्टि को चतुर्थ गुणस्थान में आत्मा की स्वानुभूति प्रगट होती है। नयों की

लक्ष्मी कहाँ चली जाती है? प्रमाण अस्त हो जाता है। आत्मा कोई अलग प्रकारसे प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- चतुर्थ गुणस्थान में उसप्रकारसे ख्याल आता होगा।

समाधान :- चतुर्थ गुणस्थान में उसके वेदन में उसे ख्याल आता है। ख्याल मात्र कल्पित, ज्ञानसे, विकल्पसे जाना है ऐसा नहीं है, (लेकिन) समझ रूपसे निर्विकल्प है लेकिन उसे ख्याल में, वेदन में, अनुभूति में आता है। वाणी में कुछ नहीं आता, लेकिन उसकी अनुभूति में आता है। विभाव में रागादि का वेदन है, ऐसे चिदानंद स्वभाव का आनंद झरता हुआ, आस्वाद में आता हुआ, वह उससे गुप्त नहीं रहता।

मुमुक्षु :- अल्प काल यानि माताजी! बीजली के चमकारे की भाँति अनुभव होता है?

समाधान :- अल्प काल यानि थोड़ा काल। थोड़ा-अंतर्मुहूर्त का काल। इसलिये ख्याल में नहीं आये ऐसा नहीं है, प्रत्यक्ष है। उसका अनुभव प्रत्यक्ष है, थोड़ा काल।

मुमुक्षु :- माताजी! एक तर्क ऐसा था कि उपयोग एक समय में एक को जाने। तो द्रव्य को जाने तो पर्याय को कैसे जाने?

समाधान :- द्रव्य को जाने तो पर्याय को भी, सब को जानता है। वहाँ उसे कोई विकल्प करके जानना नहीं है। सहज जानता है। द्रव्य और पर्याय सब सहज-सहज उपयोगात्मक जानता है। जो उसका स्वभाव है वह स्वभाव, उसकी परिणति उपयोगात्मक द्रव्य और पर्याय सब जानता है। बिना विकल्प किये निर्विकल्परूपसे जानता है। वहाँ उसे कोई विकल्प करे तो उसमें खण्ड पड़ता है। उसे कोई खण्ड नहीं पड़ता। वह तो अबुद्धिपूर्वक है। उसके वेदन में तो द्रव्य और पर्याय सब जानने में आता है। भिन्न भिन्न उपयोग नहीं करना पड़ता। सिद्ध का अंश है। उसमें कोई तर्क लागू नहीं पड़ता।

मुमुक्षु :- यही द्रव्य-पर्याय का युगपद् प्रमाण हुआ न?

समाधान :- सब एकसाथ जानने में आता है, वह प्रमाणरूप हो जाता है, एकसाथ।

मुमुक्षु :- उसे कोई भेद पाड़ने की वृत्ति तो नहीं है।

समाधान :- वृत्ति नहीं है, सहज जानता है। वृत्ति हो तो जाने ऐसा नहीं है। बल्कि आगे बढ़ गया है। विकल्प की वृत्ति (उत्पन्न होती है) तो उसकी भूमिका विकल्पवाली, रागवाली है। ये तो विकल्पसे आगे बढ़ गया है। उसे वृत्ति नहीं है। सब रागसे छूट गया है। उसे तो सहज जानने में आता है। बिना इच्छासे जानता है। जानने की इच्छा नहीं है, सब छूट गया है। निरिच्छासे जानता है, सहजरूपसे जानता है। केवलज्ञानी को कुछ जानने की इच्छा नहीं है तो भी सब जानते हैं। तो यह एक अंश है केवल का। निरिच्छासे जानता है।

मुमुक्षु :- केवलज्ञान का अंश है।

समाधान :- केवलज्ञान का अंश है। अंतर में स्वपरप्रकाशक है। बाहर उपयोग नहीं जाता है लेकिन स्वपरप्रकाशक है। द्रव्य को जाने, गुण को जाने, पर्याय को जाने, सबको जाने। स्वपरप्रकाशक है। स्वपरप्रकाशक गुण नाश नहीं हो जाता।

मुमुक्षु :- माताजी! द्रव्य में पर्याय नहीं तो फिर पर्याय को क्यों गौण की जाती है?

समाधान :- द्रव्य में पर्याय नहीं है अर्थात् द्रव्य और पर्याय का स्वरूप भिन्न है। द्रव्य, गुण और पर्याय तो द्रव्य का स्वरूप है। पर्याय का स्वरूप और द्रव्य का स्वरूप। द्रव्य शाश्वत और पर्याय पलटती है। इसलिये ऐसा कहते हैं कि द्रव्य में पर्याय नहीं है। द्रव्य के आश्रयसे पर्याय होती है। द्रव्य के आश्रय बिना पर्याय होती नहीं। द्रव्य, गुण और पर्याय सब वस्तु का स्वरूप है। पर्याय को गौण करने में जाती है। दृष्टि की मुख्यतासे पर्याय को गौण करने में आती है। दृष्टि द्रव्य पर है और पर्याय को गौण

करता है। ज्ञान दोनों को जानता है। ज्ञान द्रव्य को जानता है, ज्ञान पर्याय को जानता है। दृष्टि के बल में आत्मा में जीवस्थान नहीं है, गुणस्थान नहीं है, कुछ नहीं है ऐसा कहते हैं। क्योंकि दृष्टि दूसरों को देखती ही नहीं। दृष्टि को अन्य कुछ देखना वह उसका विषय ही नहीं है। दृष्टि एक चैतन्य पर ही रखनी। वही उसका विषय है। दृष्टि दूसरा कुछ नहीं देखती। दृष्टि का विषय, दृष्टि एक को ही ग्रहण कर लेती है। फिर विशेष जानना वह ज्ञान का कार्य है, वह दृष्टि का कार्य नहीं है। एक पर दृष्टि रहती है। पर्याय कहीं चली नहीं जाती। दृष्टि का विषय एक को ग्रहण करने का है। उसमें पर्याय है।

दृष्टिने एक द्रव्य को ग्रहण कर लिया। उसमें पर्याय तो है। ज्ञान सब जानता है। साधना की पर्याय है, अधूरी, पूर्ण पर्याय है, सब ज्ञान जानता है। उष्णता देते-देते जैसे सुवर्ण सोलह वाल होता है। सुवर्ण तो सुवर्ण ही है। लेकिन अभी अल्पता है, सुवर्ण में भी अभी पूरा स्पष्ट.. स्वभावसे सुवर्ण ही है, लेकिन उसे उष्णता देते-देते सोलह वाल होता है। वैसे अभी साधना की पर्याय अधूरी है। इसलिये पुरुषार्थ करता है, आगे बढ़ता है। ज्ञान में जानता है कि यह पर्याय की न्यूनता है। कितना प्रगट हुआ? कुछ शुद्धता प्रगट हुई है, कुछ शुद्धता बाकी है। इसलिये अभी अन्दर चारित्र की दशा, स्वरूप रमणता विशेष नहीं है, कुछ स्वरूप रमणता है, यह सब ज्ञान में जानता है और आगे बढ़ता है। दृष्टि के बलमें उसे गौण (करते हैं)। पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं है। दृष्टि उसे देखती नहीं। दृष्टि में वह दिखाई नहीं देती। दृष्टि का विषय एक को ग्रहण (करना है)। मूल ध्येय क्या है? एक द्रव्य को ग्रहण करके आगे चलने का है। इसलिये एक द्रव्य को ग्रहण कर लिया। अनादि कालसे द्रव्य पर दृष्टि नहीं है इसलिये एक द्रव्य को ग्रहण कर लिया कि मैं कौन हूँ? उसका मूल स्वरूप ग्रहण कर लिया। वह ग्रहण करने के बाद पर्याय में कितनी अल्पता है, उस अनुसार उसकी

पुरुषार्थ की धारा चलती है। स्वानुभूति इत्यादि सब यहाँ-से प्रगट होता है, द्रव्य पर दृष्टि के ज़ोरसे।

मुमुक्षु :- ज्ञान के विषय में दोनों आते हैं-द्रव्य और पर्याय। इसलिये एक को मुख्य करता है और एक को गौण करता है।

समाधान :- एक को मुख्य और एक को गौण। ज्ञान दोनों ग्रहण करता है। जो दृष्टि का विषय है उसे भी ज्ञान ग्रहण करता है। दृष्टि के विषय को ज्ञान उसके स्थान में रखकर पर्याय को जानता है। दृष्टि को तोड़कर नहीं जानता। दृष्टि और ज्ञान बराबर... दृष्टि का विषय ज्ञान जानता है और द्रव्य का स्वरूप भी ज्ञान जानता है और पर्याय का स्वरूप भी ज्ञान जानता है। ज्ञान जानता है उस अनुसार फिर विशेष पुरुषार्थ करके स्वरूप में स्थिर होता है, आगे जाता है। विभावसे भेदज्ञान तो हुआ है, लेकिन विशेष आगे जाता है।

मुमुक्षु :- सम्यक् सन्मुख जीव को किसप्रकार का तत्त्व चिंतवन होता है? और देव-गुरु-शास्त्र प्रति कैसी भक्ति होती है?

समाधान :- सम्यक् सन्मुख में तत्त्व का विचार होता है। खुद कहाँ है वह देखना है। मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? द्रव्य-गुण-पर्याय का उसे चिंतवन होता है। मैं द्रव्य कौन हूँ? मेरे गुण, मेरी पर्याय इत्यादि सबके विचार होते हैं। गहराईसे होता है। बारंबार स्वभाव को ग्रहण करता है। ज्ञायक, मैं कौन हूँ, उस ज्ञायक के स्वभाव को ग्रहण करे, विभाव को भिन्न करने का प्रयत्न करे। विभाव और स्वयं वस्तु स्वभावसे भिन्न ही हैं, लेकिन उसका प्रयत्न करता है। ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करता है। ऐसा सब प्रयत्न करता है। वह खुद कहाँ खड़ा है वह खुद को देखना है। कैसे ग्रहण करता है और कैसे अभ्यास करता है, यह खुद को देखना है। शुभभाव में देव, गुरु, शास्त्र की महिमा होती है। भगवानने जो पूर्ण स्वरूप प्रगट किया उसकी महिमा है। गुरुने जो वस्तुस्वरूप बताया, ऐसे गुरु

की महिमा है। शास्त्र में जो वस्तु स्वरूप आता है उसकी महिमा है। सब की महिमा होती है। तत्त्व के विचार होते हैं। महिमा होती है, विभावसे भिन्न पड़ता है, ज्ञायक को ग्रहण करता है। कैसे ग्रहण करता है, सम्यक् सन्मुख कैसे है वह खुद को विचारना है। तत्त्व को पहचानकर करता है या ऊपर-ऊपरसे स्थूलरूपसे करता है, सूक्ष्मरूपसे करता है, वह सब खुद को विचार करना है।

मुमुक्षु :- धर्मी को जब स्व में उपयोग होता है उसवक्त धर्म होता है, लेकिन उपयोग जब पर में होता है तब उसे धर्म होता है या नहीं है?

समाधान :- स्व में उपयोग हो तब धर्म होता है और बाहर हो तब नहीं है, ऐसा नहीं है। उपयोगके साथ नहीं है, उसकी परिणति के साथ धर्म है। उसकी परिणति स्वरूप में (लगी है), दृष्टि तो उसकी स्वरूप पर जमी रहती है। उसने ज्ञायक को ग्रहण किया हुआ ही है। उसकी ज्ञाता की धारा चालू ही रहती है। उसका उपयोग इसप्रकार बाहर नहीं जाता कि उसके स्वरूप को नुकसान हो या स्वरूप टूट जाये, ऐसे उपयोग बाहर नहीं जाता। उपयोग बाहर जाये इसलिये स्वरूप की परिणति टूट जाये और एकत्व हो जाये, ऐसा नहीं है। द्रव्य का वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

अनादिसे परिभ्रमण करता आ रहा है तो भी द्रव्य मूल स्वभावसे.. वह विभाव परिणति करता रहा है, उपयोग बाहर जाता है, कुछ ख्याल नहीं है तो भी द्रव्य का तो नाश नहीं होता। तो अन्दर जिसने द्रव्यदृष्टि प्रगट की, यथार्थरूपसे, पुरुषार्थपूर्वक अन्दर स्वयंने द्रव्यदृष्टि प्रगट की, ज्ञाता की धारा प्रगट की, पुरुषार्थपूर्वक अंतर की परिणतिपूर्वक (प्रगट की), उसे कौन तोड़ सकता है? खुद पुरुषार्थसे खड़ा है, उपयोग बाहर जाये इसलिये वह उपयोग अपनी परिणति को तोड़ नहीं सकता। भेदज्ञान की धारा चालू ही है।

कमल जैसे पानी में निर्लेप रहता है, वैसे स्वयं निर्लेप ही रहता है। चाहे जैसे बाह्य संयोग में खड़ा हो, तो भी निर्लेप है। वस्तु स्वभावसे निर्लेप है और प्रगट पर्याय में निर्मल है। निर्लेप ही रहता है। वस्तु अनादिसे कोई जड़ के साथ एकत्व होती नहीं। प्रगट ज्ञाताधारा शुरु हुई तो कमल जैसे पानी में निर्लेप रहता है, वैसे उसकी परिणति निर्लेप भिन्न ही भिन्न रहती है। उपयोग बाहर जाये इसलिये उसका धर्म छूट नहीं जाता। धर्म तो चालू ही रहता है। ऐसी उसे अन्दरसे ज्ञान-वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है। उसकी ज्ञान-वैराग्य की शक्ति ऐसी है परिणतिरूप। उपयोग बाहर जाये तो भी एकत्व नहीं होता। वह बाहरसे दिखाई नहीं देता। बाहरसे वह गृहस्थाश्रम के कार्य में दिखाई दे, कोई शुभ कार्य में दिखाई दे, गृहस्थाश्रम के कार्य में दिखाई दे तो भी उसकी परिणति अंतरसे एकत्व होती नहीं। उसकी ज्ञान-वैराग्य की शक्ति कोई अलग है। उसकी ज्ञाता की धारा चालू ही रहती है। याद करना पड़े और भूल जाये ऐसा नहीं है। उसे वेदन-अमुक प्रकारसे ज्ञाताधारा चालू ही रहती है। निर्विकल्प दशा हो वह अलग बात है, लेकिन उसे सविकल्प दशा में भी ज्ञाता की धारा चालू ही रहती है। भिन्न ही भिन्न रहता है। चाहे जैसे प्रसंग हो, उसे बाहर के कोई उपसर्ग परिषह आये गृहस्थाश्रम में तो भी वह उसकी ज्ञाता की धारा को तोड़ नहीं सकते। कोई अनुकूलता के गंज आये अथवा प्रतिकूलता के ढेर आये तो भी उसकी ज्ञाताधारा को तोड़ नहीं सकते। ऐसा उसका पुरुषार्थ चालू ही रहता है। बहुत प्रतिकूलता आयी इसलिये उसकी ज्ञाताधारा टूट जाये (ऐसा नहीं है)।

शास्त्र में आता है न? पूरा ब्रह्माण्ड ईधर-ऊधर हो जाये तो भी उसे कोई डिगा नहीं सकता, उसकी ज्ञाताधारा चालू है। अनुकूलता के गंज आये तो भी ज्ञाताधारासे वह टूट नहीं जाता। उसमें उसे अनुकूलता में एकत्वबुद्धि हो नहीं जाती। चक्रवर्ती का राज और देवलोक के रत्न की

राशि हो तो भी उसमें एकत्व नहीं होता। उससे भिन्न ही भिन्न, निर्लेप ही रहता है। उसे लगनी लगी आत्मा की, उसे आनन्द की अनुपमता लगी, महिमा लगी आत्मा की, उसे बाहर कोई भी आकर्षित नहीं कर सकता, वह प्रतिकूलता में खेद नहीं हो जाता। ऐसी उसकी ज्ञाता की धारा भिन्न ही रहती है। ऐसी ज्ञान-वैराग्य की शक्ति (है)। मैं तो ज्ञायकभाव हूँ। यह परिग्रह मेरा स्वरूप नहीं है। यह पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), मैं उससे भिन्न ज्ञायकभाव ही हूँ। ऐसी ज्ञाताधारा को कोई तोड़ नहीं सकता। जिस पुरुषार्थसे जिस पंथ पर चला सो चला। पुरुषार्थ की धारा चली उसे कोई रोक नहीं सकता। खुद यदि (पुरुषार्थसे) चला तो उसे कोई परद्रव्य तोड़ नहीं सकता। परिभ्रमण किया वह खुद के पुरुषार्थ की मन्दतासे और नहीं होता वह खुद के पुरुषार्थ के अभावसे।

मुमुक्षु :- परिणति में आनन्द का वेदन आता होगा?

समाधान :- परिणति में आनन्द का वेदन.. अमुक प्रकारसे उसे शान्ति और समाधि वर्तती है। शान्ति और समाधि, विश्रान्ति वर्तती है। अनुपम आनन्द जो निर्विकल्प दशा का (होता है) जो सिद्ध की जाति का होता है वह अलग बात है। सविकल्प दशा में उपयोग बाहर है तो भी अज्ञानदशा में एकत्वबुद्धि और आकुलता का वेदन था वैसा वेदन उसे नहीं है। उसे कोई अलग जाति का समाधि और शान्ति का वेदन है। उसकी सविकल्प दशा में भी उसकी शान्ति और समाधि का वेदन कोई अलग ही होता है। अज्ञानदशा में आकुलता के वेदन में जो आकुल-व्याकुल होता था ऐसा उसे नहीं है। सविकल्प जो अज्ञानदशा में था और यह जो सविकल्प है, दोनों की जाति भिन्न है। अज्ञानदशा की एकत्वबुद्धि और इसकी भेदज्ञान की धारा, उसकी समाधि और शान्तिसे अलग ही जाति है। वह भिन्न ही है। और उसकी निर्विकल्प दशा उससे भिन्न है।



द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से दृष्टि का परिणामन और द्रष्टि का विषय सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

परिणाम से भी ऊँडा, सूक्ष्माति-सूक्ष्म तत्त्व जो है सो 'मैं' हूँ।
३७०.

सम्यग्दृष्टि जीव अपनेको सदा 'त्रिकाली आत्मा हूँ' ऐसा ही मानते हैं। 'मैं ध्रुव सिद्ध हूँ' - जिसमें सिद्ध-दशाकी भी गौणता रहती है; सिद्ध-दशाका भी प्रति समय उत्पाद-व्यय होता है; 'मैं तो सदा ध्रुव हूँ'। ३७३.

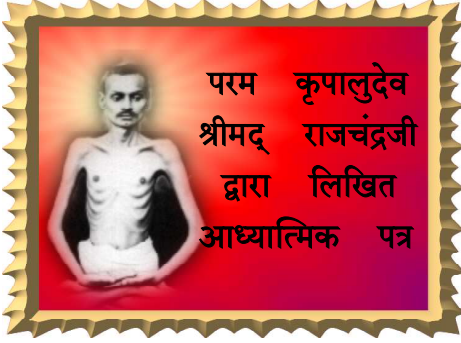
'मैं त्रिकाली स्वभाव कभी बँधा ही नहीं हूँ' तो फिर 'मुझे' मुक्त कहना तो गाली है। पर्याय को मुक्त कहो वह तो ठीक है, क्योंकि वह बँधी हुई थी। परंतु 'मुझे' तो मुक्त कहना भी ठीक नहीं है। ३७५.

दृष्टि का नशा चढ़ जाए तो बारंबार अंतर में ही वलण होता है बाहर में कुछ रुचता ही नहीं।
४०६.

प्रश्न :- तो क्या नशे की माफ़िक दृष्टि का स्वरूप है ? अन्य कुछ देखती ही नहीं।
उत्तर :- हाँ! दृष्टि का नशा ही ऐसा है, अन्य कुछ देखती ही नहीं; एक अपनी ओर (स्वरूप की ओर) ही दौड़ती है। इसीलिए तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को बाहर में, चर्चा आदि में रुचता ही नहीं, वह तो अंदर ही अंदर जाना चाहता है। ४०७.

केवलज्ञान से अपने को लाभ होनेवाला नहीं और शुभाशुभावों से अपने को नुकसान होनेवाला नहीं, 'मैं तो ऐसा तत्त्व हूँ' (ध्रुवतत्त्व, उत्पाद-व्यय से निरपेक्ष है - ऐसी दृष्टि की बात है।)
जैसे कोई मेरु से माथा फोड़े तो उससे मेरु हिलता नहीं है, ऐसे ही परिणाम मेरे से टकराते हैं तो भी 'अपन' परिणाम से हिलनेवाले नहीं हैं। ४२९.

इधर की (त्रिकाली की) दृष्टि होती ही (पर्याय अपेक्षा) मुक्ति चालू हो जाती है। चालू क्या हो जाती है ! (द्रव्यदृष्टि अपेक्षा या भावीनय से) मुक्ति हो ही गई। ४३७.



२१९

बंबई, फागुन वदी १, १९४७

“एक देखिये, जानिये”^१ इस दोहेके विषयमें आपने लिखा, तो यह दोहा हमने आपकी निःशंकताकी दृढ़ताके लिये नहीं लिखा था; परन्तु स्वभावतः यह दोहा प्रशस्त लगनसे लिख भेजा था। ऐसा लय तो गोपांगनाओंमें था। श्रीमद्भागवत्में महात्मा व्यासने वासुदेव भगवानके प्रति गोपियोंकी प्रेमभक्तिका वर्णन किया है वहाँ परमाह्लादक और आश्चर्यकारक है।

‘नारद भक्तिसूत्र’ नामका एक छोटा शिक्षाशास्त्र महर्षि नारदजीका रचा हुआ है, उसमें प्रेमभक्तिका सर्वोत्कृष्ट प्रतिपादन किया है।

उदासीनता कम होनेके लिये आपने दो तीन दिन यहाँ दर्शन देनेकी कृपा प्रदर्शित की, परन्तु वह उदासीनता दो तीन दिनके दर्शनलाभसे दूर होनेवाली नहीं है। परमार्थ उदासीनता है। ईश्वर निरन्तरका दर्शनलाभ दे ऐसा करें तो पधारना, नहीं तो अभी नहीं।

२२०

बंबई, फागुन वदी ३, शनि, १९४७

आज आपका जन्मकुण्डलीसहित पत्र मिला। जन्मकुण्डली सम्बन्धी उत्तर अभी नहीं मिल सकता, भक्ति सम्बन्धी प्रश्नोंके उत्तर यथाप्रसंग लिखूंगा। हमने आपको जिस सविस्तर पत्रमें ‘अधिष्ठान’ के विषयमें लिखा था वह समागममें समझा जा सकता है।

‘अधिष्ठान’का अर्थ यह है कि जिसमेंसे वस्तु उत्पन्न हुई, जिसमें वह स्थिर रही और जिसमें वह लयको प्राप्त हुई। इस व्याख्याके अनुसार ‘जगतका अधिष्ठान’ का अर्थ समझियेगा।

जैनदर्शनमें चैतन्यको सर्वव्यापक नहीं कहा है। इस विषयमें आपके ध्यानमें जो कुछ हो सो लिखियेगा।

२२१

बंबई, फागुन वदी ८, बुध, १९४७

श्रीमद् भागवत परमभक्तिरूप ही है। इसमें जो जो वर्णन किया है वह सब लक्ष्यरूपको सूचित करनेके लिये है।

मुनिको सर्वव्यापक अधिष्ठान आत्माके विषयमें कुछ पूछनेसे लक्ष्यरूप उत्तर नहीं मिल सकेगा। कल्पित उत्तरसे कार्यसिद्धि नहीं है। आप अभी ज्योतिषादिकी भी इच्छा न करें, क्योंकि वह कल्पित है; और कल्पितपर ध्यान नहीं है।

परस्पर समागम-लाभ परमात्माकी कृपासे हो ऐसा चाहता हूँ। वैसे उपाधियोग विशेष रहता है, तथापि समाधिमें योगकी अप्रियता कभी न हो ऐसा ईश्वरका अनुग्रह रहेगा, ऐसा लगता है। विशेष सविस्तर पत्र लिखूंगा तब।
